

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 20: भक्ति की श्रेष्ठता

5 October 2026



भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव को पृथ्वी से उठते तीन मार्ग दिखाते हैं — ज्ञान, कर्म तथा भक्ति — जो सभी एक ही तेजोमय लक्ष्य की ओर जाते हैं, और फिर यह रहस्य उद्घाटित करते हैं कि केवल प्रेम का मार्ग ही किसी अन्य मार्गदर्शन के बिना अपने गन्तव्य तक पहुँचा देता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं तथा शिक्षाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। उद्धव अब भगवान् के समक्ष एक ऐसा प्रश्न रखते हैं जो स्पष्टतः उन्हें व्याकुल कर रहा है: वेद, जो भगवान् का अपना वचन है, एक ही साँस में आदेश तथा निषेध दोनों देता प्रतीत होता है। उत्तर में, भगवान् उद्धव-गीता के सबसे प्रिय प्रसंगों में से एक को उद्घाटित करते हैं, ज्ञान, कर्म तथा भक्ति — इन तीन मार्गों को क्रमशः स्पष्ट करते हुए, और यह दर्शाते हुए कि उनके प्रति प्रेमपूर्ण भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य से भी किस प्रकार श्रेष्ठ है।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 20 (विंश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: शुद्ध भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य से भी श्रेष्ठ है
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका
- केन्द्रीय विषय: ज्ञान, कर्म तथा भक्ति — इन तीन मार्गों का विश्लेषण; कौन किस मार्ग के योग्य है; तथा शुद्ध भक्ति की महिमा
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 1-37
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

उन्नीसवाँ प्रवचन भगवान् द्वारा उद्धव को पुण्य तथा पाप के भेद पर अपना उपदेश पूर्ण करते हुए समाप्त हुआ था। विस्तृत चर्चा स्वयं कुछ सिद्ध नहीं करती, उन्होंने कहा; सच्ची सद्बृत्ति तो केवल दूसरों के गुण-दोष देखने की आदत को ही त्याग देना है। इस शान्त उपदेश के साथ भगवान् ने पिछले प्रवचन को विराम दिया, और उद्धव के इस गहरे प्रश्न की भूमिका रखी कि वेद के अनेक आदेश किस प्रकार किसी आत्मा को परम कल्याण तक ले जा सकते हैं।

उद्धव का प्रश्न — क्या वेद वास्तव में मार्ग दर्शाता है?

उद्धव एक ऐसी बात रखते हैं जो स्पष्टतः उन्हें व्याकुल कर रही है। भगवान् का अपना वचन, वेद के रूप में, वे कहते हैं, पूर्णतः आदेश तथा निषेध से बुना गया है, और इस प्रकार प्रत्येक कर्म के गुण-दोष का लेखा-जोखा रखता है।

श्रीउद्धव उवाच

विधिश्च प्रतिषेधश्च निगमो हीश्वरस्य ते ।

अवेक्षतेऽरविन्दाक्ष गुणं दोषं च कर्मणाम् ॥ १ ॥

śrī-uddhava uvāca vidhiś ca pratiṣedhaś ca nigamo hīśvarasya te avekṣate 'raviṇḍākṣa guṇaṁ doṣaṁ ca karmaṇām

अर्थ: उद्धव ने कहा: हे कमल-नयन भगवान्! आपका वचन, वेद, आदेश तथा निषेध दोनों से मिलकर बना है, और इस प्रकार प्रत्येक कर्म के गुण-दोष को तौलता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 1)

वेद, उद्धव आगे कहते हैं, वर्णों तथा आश्रमों का भेद, तथा यज्ञ के लिए उपयुक्त द्रव्य, स्थान, काल भी निश्चित करता है, और स्वर्ग-नरक के अस्तित्व को भी मानता है। तो फिर, इतने भेदों पर आधारित वचन किस प्रकार किसी आत्मा को समस्त भेदों से परे ले जा सकता है — विशेषकर जब वही वेद अपने गहनतम अंशों में उस भेद को ही मिटा देता है जो वह अन्यत्र सिखाता है? यह व्याकुलता, उद्धव स्वीकार करते हैं, वे

भगवान् के समक्ष सुलझाने हेतु रखते हैं (श्लोक २-५)।



उद्धव पूछते हैं कि भगवान् का अपना वचन, वेद, जो आदेश तथा निषेध से बुना है, किस प्रकार किसी आत्मा को समस्त भेदों से परे एक ही लक्ष्य तक ले जा सकता है (श्लोक

1)।

तीन मार्ग, एक भगवान्

भगवान् का उत्तर इस प्रवचन का हृदय खोलता है। बहुत पहले, वे कहते हैं, उन्होंने स्वयं समस्त प्राणियों के परम कल्याण हेतु तीन मार्ग सिखाए थे, और इनके अतिरिक्त अन्यत्र कोई चौथा मार्ग नहीं है।

श्रीभगवानुवाच

योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया ।

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽस्ति कुत्रचित् ॥ ६ ॥

śrī-bhagavān uvāca yogās trayo mayā proktā nṛṇāṃ śreyo-vidhitsuṣā jñānaṃ karma ca bhaktiś ca nopāyo 'nyo 'sti kutracit

अर्थ: भगवान् ने कहा: ज्ञान, कर्म तथा भक्ति — ये तीन योग मैंने समस्त मनुष्यों के परम कल्याण की इच्छा से सिखाए हैं; इनके अतिरिक्त अन्यत्र कोई मार्ग नहीं है। (स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 6)

ज्ञान उसी आत्मा के योग्य है जिसमें कर्म के फल के प्रति समस्त रुचि पहले ही समाप्त हो गई हो; कर्म उसके योग्य है जो अब भी उस फल की कामना रखता है और जिसका मन उससे अभी विरक्त नहीं हुआ (श्लोक ७)। किन्तु एक तीसरी, सबसे सौभाग्यशाली आत्मा भी है — वह जिसमें, किसी अनायास सौभाग्य से, भगवान् की ही कथा-कीर्तन सुनने की श्रद्धा अंकुरित हो गई हो, जो न तो संसार से उद्विग्न है न उसमें गहराई से आसक्त। ऐसी आत्मा के लिए भक्ति ही परम सिद्धि प्रदान करती है।

यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु यः पुमान् ।

न निर्विण्णो नातिसक्तो भक्तियोगोऽस्य सिद्धिदः ॥ ८ ॥

yadṛcchayā mat-kathādaṁ jāta-śraddhas tu yaḥ pumān na nirviṇṇo nāti-sakto bhakti-yogo 'sya siddhi-daḥ

अर्थ: किन्तु जिस पुरुष में, किसी अनायास सौभाग्य से, मेरी कथा-कीर्तन सुनने की श्रद्धा जग गई हो — जो न संसार से उद्विग्न है न उसमें गहराई से आसक्त — उसके लिए भक्ति-योग ही सिद्धि प्रदान करता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 8)

जब तक वह उद्विग्नता या वह श्रद्धा पूर्णतः न पक जाए, भगवान् कोमलता से जोड़ते हैं, मनुष्य को बिना जल्दी किए अपने नियत कर्तव्यों का पालन करते रहना चाहिए (श्लोक ९)।



भगवान् उस आत्मा का वर्णन करते हैं जिसमें उनकी कथा-कीर्तन सुनने की श्रद्धा अनायास अंकुरित हो गई हो — ऐसी आत्मा के लिए भक्ति ही परम सिद्धि देती है (श्लोक 8)।

अपने ही धर्म में स्थिर, पक्षी, तथा नौका

जो मनुष्य अपने धर्म में स्थिर रहते हुए, फल की कामना बिना यज्ञ करता है, वह किसी निषिद्ध कर्म में प्रवृत्त हुए बिना न स्वर्ग जाता है न नरक; इस प्रकार अपने मार्ग के प्रति सच्चा रहते हुए, वह बिना खोजे ही शुद्ध ज्ञान को, या भगवान् की कृपा से भक्ति को, प्राप्त कर लेता है (श्लोक १०-११)। यह मानव-लोक ही है, भगवान् कहते हैं, जिसकी इच्छा स्वर्गवासी तथा नरकवासी दोनों गुप्त रूप से करते हैं, क्योंकि यही लोक ज्ञान तथा भक्ति दोनों को सम्भव बनाता है — स्वर्ग तथा नरक स्वयं इनमें से कोई नहीं दे सकते (श्लोक १२)। अतः विवेकी मनुष्य को न स्वर्ग की, न नरक की, और न ही इस लोक में पुनः जन्म की कामना करनी चाहिए, क्योंकि किसी भी शरीर के प्रति आसक्ति आत्मा के सच्चे कल्याण की उपेक्षा में परिणत होती है; यह शरीर नश्वर है, यद्यपि जीवन के वास्तविक लक्ष्य का यही दुर्लभतम साधन है, इसलिए मृत्यु के अप्रत्याशित आने से पहले ही मुक्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए (श्लोक १३-१४)।

जिस पक्षी को अपने घर से आसक्ति नहीं है, वह उस वृक्ष के काटे जाने पर भी शोक नहीं करता जिसमें उसका नीड़ है — वह बस आकाश में उड़ जाता है और अन्यत्र शान्ति पा लेता है; इसी प्रकार, जो अपने ही दिन-रात को अपने जीवन-वृक्ष को निरन्तर काटते देखता है, वह क्षण भर काँपता तो है, किन्तु आसक्ति से मुक्त होकर परमात्मा का साक्षात्कार होते ही शान्त हो जाता है (श्लोक १५-१६)। अब इस अध्याय की सबसे कोमल भावना वाला श्लोक आता है, जिसमें भगवान् एक ऐसी उपमा देते हैं जिसे हर भक्त सदा स्मरण रखेगा — यह दुर्लभ देह, एक सुसज्जित जलयान, गुरु द्वारा थामी गई पतवार, तथा स्वयं भगवान् द्वारा भेजी गई अनुकूल वायु।

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥ १७ ॥

*nṛ-deham ādyaṁ su-labhaṁ su-durlabhaṁ plavaṁ su-kalpaṁ guru-karṇadhāraṁ
mayānukūlena nabhasvateritaṁ pumān bhavābdhiṁ na taret sa ātma-hā*

अर्थ: मानव-शरीर समस्त साधनों में प्रथम तथा सर्वोत्तम है — प्रतीत होता है सुलभ, किन्तु वास्तव में अत्यन्त दुर्लभ; एक भली प्रकार बनाई गई नौका, जिसका कर्णधार गुरु है, तथा जिसे मैं स्वयं अनुकूल वायु की भाँति आगे बढ़ाता हूँ। जो पुरुष ऐसी नौका में भी भवसागर को पार नहीं करता, वह निश्चय ही अपनी आत्मा का हत्यारा है। (स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 17)



भगवान् दुर्लभ मानव-शरीर की तुलना एक सुन्दर नौका से करते हैं, जिसका कर्णधार गुरु है और जिसे वे स्वयं अनुकूल वायु की भाँति भवसागर पार कराते हैं (श्लोक 17)।

चंचल मन को स्थिर करना

ज्ञान-मार्ग पर चलने वाली आत्मा के लिए, भगवान् अब मन को वश में करने की व्यावहारिक कला बताते हैं। नए-नए कर्मों के आरम्भ से विरक्त, इन्द्रियों को वश में रखते हुए, साधक को बार-बार अभ्यास से मन को धीरे-धीरे स्थिर करना चाहिए; जब वह फिर भटके, तो उसे उसी कोमल दृढ़ता से लौटाना चाहिए जैसे अभी न सधे घोड़े को सधाया जाता है, प्राण तथा इन्द्रियों को सत्त्व से परिपक्व बुद्धि के द्वारा वश में करते हुए — यह मन का धैर्यपूर्ण, पुनः-पुनः जीता जाना ही, भगवान् कहते हैं, सर्वोच्च योग है (श्लोक १८-२१)।

सृष्टि के उद्भव तथा लय में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से मन अन्ततः शान्त हो जाता है; गुरु की शिक्षा पर बार-बार चिन्तन करते हुए वह अपनी ही दुष्टता त्याग देता है। ऐसे मन को केवल परमात्मा में स्थिर करना चाहिए — आत्मसंयम द्वारा, जीव तथा परमात्मा की एकता की खोज द्वारा, या भगवान् के पावन स्वरूप की प्रेमपूर्ण उपासना द्वारा — अन्य किसी उपाय से नहीं। यदि साधक भूल से कोई निन्दनीय कर्म कर बैठे, तो उसे उस दोष को योग के द्वारा ही भस्म कर देना चाहिए; क्योंकि अपने ही मार्ग के प्रति दृढ़ निष्ठा ही सद्बुद्धि का सच्चा अर्थ है (श्लोक २२-२६)।

उस भक्ति की महिमा जो अभी छोड़ नहीं पाया

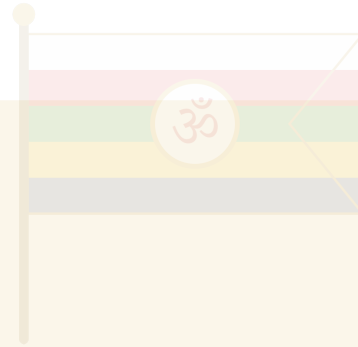
भगवान् अब विशेष कोमलता से उस आत्मा की ओर मुड़ते हैं जिसे हर भक्त पहचान लेगा — जिसमें उनकी कथाओं के प्रति श्रद्धा जगी है, जो वास्तव में मात्र कर्मकाण्ड से उद्ध्विग्न हो गया है, जो स्पष्ट रूप से जानता है कि विषय-वासना दुःख से ही बनी है, और फिर भी उसे छोड़ नहीं पाता।

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्वकर्मसु ।

वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः ॥ २७ ॥

ततो भजेत मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः ।

जुषमाणश्च तान् कामान् दुःखोदकांश्च गर्हयन् ॥ २८ ॥



jāta-śraddho mat-kathāsu nirvinṇaḥ sarva-karmasu veda duḥkhātmakān kāmān parityāge 'py anīśvaraḥ tato bhajeta mām prītaḥ śraddhālur dṛḍha-niścayaḥ juṣamāṇaś ca tān kāmān duḥkhodarkāmś ca garhayan

अर्थ: जिसमें मेरी कथाओं के प्रति श्रद्धा जगी हो, जो समस्त कर्मकाण्ड से उद्ध्विग्न हो गया हो, जो जानता हो कि विषय-वासना स्वयं दुःख से बनी है, किन्तु जिसे त्यागने की शक्ति नहीं रखता — ऐसे व्यक्ति को, ठीक इसी कारण, प्रेम तथा दृढ़ निश्चय सहित श्रद्धापूर्वक मेरी उपासना करनी चाहिए, उन्हीं सुखों का भोग करते हुए भी उन्हें भविष्य के दुःख के बीज मानकर निन्दित करते रहना चाहिए। (स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 27-28)

इस श्लोक में कोई डाँट नहीं है, केवल एक खुला द्वार है। भगवान् ऐसी आत्मा से ऐसे वैराग्य का आडम्बर नहीं माँगते जो अभी अर्जित नहीं हुआ; वे केवल यह माँगते हैं कि वह जितनी भी श्रद्धा रखती हो, उसी के साथ उनकी ओर प्रेमपूर्वक मुड़ती रहे, जबकि इच्छा के साथ उसका अधूरा लेन-देन स्वयं समाप्त होता रहे। जो मुनि इसी प्रकार उनकी उपासना करता रहता है, उसके हृदय में छिपी समस्त कामनाएँ धीरे-धीरे क्षीण हो

जाती हैं, क्योंकि भगवान् स्वयं उसके हृदय में निवास करने आ गए होते हैं; हृदय की ग्रन्थि — पृथक् अहंकार का मिथ्या भाव — कट जाती है, समस्त सन्देह घुल जाते हैं, और समस्त कर्मों का संचित भार उस क्षण ही समाप्त हो जाता है जब सम्पूर्ण जगत् की आत्मा साक्षात् देखी जाती है (श्लोक २९-३०)।

शुद्ध भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य से भी श्रेष्ठ क्यों है

यहाँ भगवान् वह श्लोक कहते हैं जो इस सम्पूर्ण प्रवचन को उसका नाम तथा उसकी महिमा देता है।

तस्मान्मद्भक्तियुक्तस्य योगिनो वै मदात्मनः ।
न ज्ञानं न च वैराग्यं प्रायः श्रेयो भवेदिह ॥ ३१ ॥

*tasmān mad-bhakti-yuktasya yogino vai mad-ātmanaḥ na jñānaṁ na ca vairāgyaṁ prāyaḥ śreya
bhaved iha*

अर्थ: अतः जो योगी मेरी भक्ति से युक्त है, जिसका हृदय मुझमें ही लीन हो गया है, उसके लिए सामान्यतः न ज्ञान और न ही वैराग्य स्वयं इस लोक में परम कल्याण होता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 31)

यह श्लोक यह नहीं कहता कि ज्ञान तथा वैराग्य व्यर्थ हैं — भगवान् ने ज्ञान-मार्ग के धैर्यपूर्ण अभ्यास का सम्मान करते हुए अभी अनेक श्लोक कहे हैं। यह कुछ अधिक कोमल बात कहता है: जब हृदय भगवान् के प्रति प्रेमपूर्ण भक्ति में सचमुच विलीन हो जाता है, तब वह भक्ति ही अपने भीतर वह सब कुछ धारण कर लेती है जो ज्ञान तथा वैराग्य देने के लिए ही थे, अतः उन्हें अलग से साधने की आवश्यकता नहीं रहती। भक्ति ज्ञान के इर्द-गिर्द कोई शॉर्ट-कट नहीं है; वह ज्ञान की पूर्णता ही है, सबसे मधुर द्वार से पहुँचती हुई। इसीलिए भगवान् कहते हैं कि उनका भक्त, इसी भक्ति-योग के द्वारा, वह सब कुछ सहज ही प्राप्त कर लेता है जिसके लिए अन्य लोग यज्ञ, तप, ज्ञान, वैराग्य या दान से श्रम करते हैं — स्वर्ग, मुक्ति, या स्वयं उनके धाम में निवास — यदि ऐसा भक्त उनमें से किसी की भी कामना कर ले (श्लोक ३२-३३)।

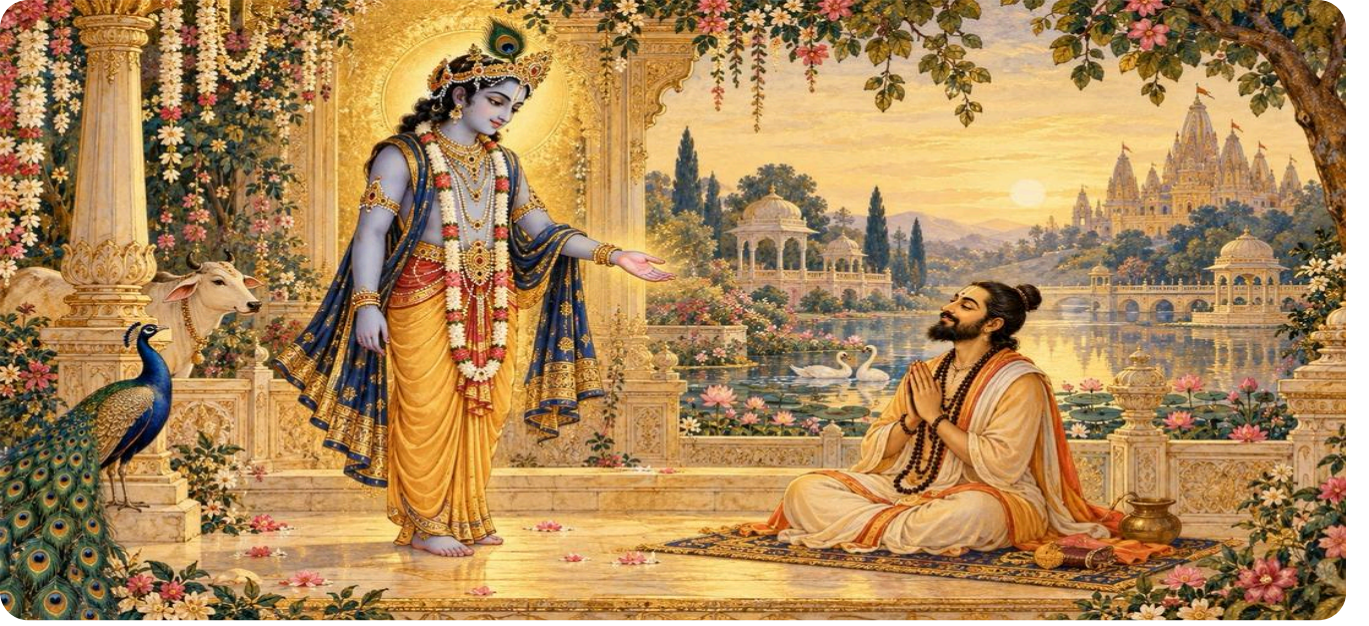
वह भक्त जो कुछ नहीं चाहता — मुक्ति भी नहीं

और यहाँ भगवान् अपने समस्त भक्तों का सबसे विस्मयकारी रहस्य उद्घाटित करते हैं।

न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम ।
वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम् ॥ ३४ ॥

*na kiñcit sādhavo dhīrā bhaktā hy ekāntino mama vāñchanty api mayā dattaṁ kaivalyam
apunar-bhavam*

अर्थ: किन्तु मेरे साधु, धीर, केवल मेरे प्रति ही समर्पित भक्त कुछ भी नहीं चाहते — मेरे द्वारा स्वयं प्रदान किए जाने पर भी पुनर्जन्म से मुक्ति रूपी कैवल्य तक नहीं। (स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 34)



भगवान् घोषित करते हैं कि उनके साथ भक्त, केवल उन्हीं को समर्पित, कुछ भी नहीं चाहते — उस मुक्ति तक नहीं, जिसे वे स्वयं देने को तत्पर हैं (श्लोक 34)।

ऐसी आत्माओं ने वह सत्य समझ लिया है जिसे विद्वान् सर्वत्र समस्त अन्य उपलब्धियों से ऊपर सराहते हैं: निरपेक्षता ही सबसे महान् तथा सम्पूर्ण कल्याण है, और इसलिए सच्ची भक्ति केवल उसी को मिलती है जो इच्छा से मुक्त है और बदले में कुछ नहीं चाहता (श्लोक 35)। पुण्य तथा पाप इन समचित्त आत्माओं को स्पर्श नहीं करते, जो पूर्णतः भगवान् को ही समर्पित हैं, और जो सामान्य तर्क की पहुँच से परे चली गई हैं (श्लोक 36)। और इसलिए भगवान् इन तीनों मार्गों में से किसी भी सच्चे यात्री को यह वचन देकर समापन करते हैं: जो भी इसे श्रद्धापूर्वक चलता है, वह उनके द्वारा दर्शाए उस एक ही गन्तव्य तक पहुँचता है — एक ऐसा निर्भय निवास जो उनका अपना है।

एवमेतान् मया दिष्टाननुतिष्ठन्ति मे पथः ।

क्षेमं विन्दन्ति मत्स्थानं यद् ब्रह्म परमं विदुः ॥ ३७ ॥

evam etān mayā diṣṭān anutiṣṭhanti me pathaḥ kṣemaṁ vindanti mat-sthānaṁ yad brahma paramaṁ viduḥ

अर्थ: जो इस प्रकार मेरे द्वारा दर्शाए गए इन मार्गों पर श्रद्धापूर्वक चलते हैं, जो निश्चय ही मुझ तक ले जाते हैं, वे उस निर्भय धाम को प्राप्त करते हैं जो मेरा अपना है, और उसे ही परम ब्रह्म के रूप में जानते हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 20, श्लोक 37)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. तीन मार्ग, एक लक्ष्य। ज्ञान, कर्म तथा भक्ति ही वे तीन मार्ग हैं जो भगवान् ने आत्मा के परम कल्याण हेतु सिखाए हैं; प्रत्येक हृदय की भिन्न तैयारी के अनुकूल है (श्लोक 6–9)।
2. मानव-शरीर एक दुर्लभ तथा अमूल्य नौका है। प्रतीत होता है सुलभ, किन्तु वास्तव में पाना अत्यन्त कठिन, यह आत्मा को भवसागर के पार तभी ले जा सकता है जब गुरु कर्णधार हो और भगवान् अनुकूल वायु — इसे व्यर्थ करना अपनी ही आत्मा को हानि पहुँचाना है (श्लोक 14–17)।

3. भक्ति उस हृदय का स्वागत करती है जो अभी छोड़ नहीं पाया। जिसे भगवान् की कथाओं पर श्रद्धा है किन्तु अब भी इच्छा का खिंचाव अनुभव करता है, उससे किसी अनर्जित वैराग्य का आडम्बर नहीं माँगा जाता — केवल यह कि वह प्रेम से उपासना करे जबकि वह इच्छा धीरे-धीरे स्वयं समाप्त होती रहे (श्लोक 27–30)।

4. शुद्ध भक्ति ज्ञान तथा वैराग्य से श्रेष्ठ है। जिस हृदय की प्रेमपूर्ण भक्ति में सचमुच लीनता हो गई है, उसके लिए ज्ञान तथा वैराग्य अलग से साधने के लक्ष्य नहीं रह जाते, क्योंकि भक्ति ही उनका फल अपने भीतर धारण कर लेती है (श्लोक 31)।

5. सच्चा भक्त कुछ नहीं चाहता, मुक्ति भी नहीं। भगवान् को पाकर, उनके साधु भक्त आगे कुछ भी नहीं चाहते — उस पुनर्जन्म से मुक्ति भी नहीं, जिसे वे स्वयं देने को तत्पर हैं (श्लोक 34–35)।

6. इन मार्गों में से किसी पर भी श्रद्धापूर्वक चलना घर पहुँचाता है। जो भी ज्ञान, कर्म या भक्ति का श्रद्धापूर्वक अनुसरण करता है जैसा भगवान् ने दर्शाया है, वह उनके निर्भय धाम को प्राप्त करता है तथा परम ब्रह्म को जानता है (श्लोक 37)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय के पश्चात् जो हृदय में रह जाता है वह कोई नियम नहीं, एक करुणा है। उद्धव वास्तव में व्याकुल होकर आते हैं कि वेद अपने ही भेदों के विरुद्ध तर्क करता प्रतीत होता है, और भगवान् केवल उन्हें सुधारते नहीं — वे क्षितिज को विस्तृत कर देते हैं, एक असम्भव माँग के स्थान पर तीन ईमानदार मार्ग प्रदान करते हुए। फिर, लगभग प्रसंगवश, वे सम्पूर्ण भागवत का सबसे कोमल रहस्य उद्घाटित कर देते हैं: वह आत्मा जो अब भी संसार के सुखों का स्वाद लेती है, जो अभी छोड़ नहीं पाई, उनके प्रेम से बाहर नहीं है। उसे केवल जितनी भी श्रद्धा उसके पास है, उसी के साथ उनकी ओर मुड़ते रहना है, उपासना करते रहना है, जबकि इच्छा के साथ उसका अधूरा लेन-देन स्वयं अपना मार्ग पूरा करता रहे। इसमें कोई तिरस्कार नहीं, केवल धैर्य है — उस भगवान् का धैर्य जो किसी अपूर्ण भक्त को स्वयं भवसागर के पार ले जाना पसन्द करते हैं, न कि उस पूर्णता की प्रतीक्षा करना जो स्वयं कभी न आए। शायद यही सच्चा कारण है कि भक्ति को ज्ञान तथा वैराग्य से भी श्रेष्ठ कहा गया है: वह हमारे योग्य बनने की प्रतीक्षा नहीं करती, अपना कार्य आरम्भ करने के लिए।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, भगवान् द्वारा वर्णित उस नौका को स्मरण कीजिए — वह दुर्लभ शरीर जो आप पहले से ही धारण करते हैं, जिसे आपको प्राप्त जो भी मार्गदर्शन मिला है वह चलाता है, और जो केवल उनकी कृपा से आगे बढ़ता है। कुछ शान्त क्षण निकालिए केवल इस नौका के लिए कृतज्ञ होने को, इसे सहज मानकर नहीं, और एक सच्ची प्रार्थना कीजिए कि आप इसे तट पर अनुपयोगी पड़ा न रहने दें। यदि अब भी कोई इच्छा आपके हृदय को खींचती है, तो उससे बल से मत लड़िए; इसके स्थान पर, भगवान् का नाम कोमलता से उसी इच्छा में बोलिए, यह विश्वास करते हुए कि प्रेम वह कार्य कर देगा जो केवल इच्छाशक्ति नहीं कर सकती। आज के लिए अपने होंठों से धीरे-धीरे यह कहिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” — और इतना ही पर्याप्त होने दीजिए।

उपसंहार

एकादश स्कन्ध का विंश प्रवचन उद्धव की वेद के विषय में सच्ची व्याकुलता का उत्तर एक ही भगवान् तक जाने वाले तीन मार्ग खोलकर देता है — ज्ञान उस आत्मा के लिए जो कर्म से विरक्त हो गई है, कर्म उसके लिए जो अब भी उसके फल से बँधा है, और भक्ति उसके लिए जिसमें श्रद्धा स्वयं ही जाग उठी है। भगवान् दुर्लभ मानव-शरीर की तुलना उस नौका से करते हैं जिसे मृत्यु द्वारा जीवन-वृक्ष काटे जाने से पहले भवसागर पार कर लेना है, और भटकते मन को घर लाने की धैर्यपूर्ण कला दर्शाते हैं। सबसे अधिक कोमलता से, वे भक्ति का द्वार उस आत्मा के लिए भी खोलते हैं जो अभी अपनी इच्छाओं का त्याग नहीं कर पाई, और घोषित करते हैं कि ऐसा प्रेम, एक बार हृदय में बस जाने पर, साधक से आगे कुछ और माँगने की आवश्यकता ही समाप्त कर देता है — ताकि उनके सच्चे भक्त, आगे कुछ भी न चाहते हुए, अन्ततः उनके ही निर्भय धाम को प्राप्त हो जाएँ।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, विंश प्रवचन, पृष्ठ 606–610।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-20-bhakti-ki-shreshthata-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़्डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट